

भारतीय शिक्षा नीति

या

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

बहुत बार सोचा, शिक्षाविदों का सोचा हुआ, पढ़ा व मनन किया, शिखा आयोगों का अध्ययन किया और उसके कटु आलोचकों की बातों को जाना, परंतु मुझे लगा कि वे सब सोच की कलाओं और सिद्धांतों में डूबे रहे, उन्होंने शिक्षा के वास्तविक संकट को नहीं पहचाना और यदि पहचाना भी हो जो उस पर ध्यान नहीं दिया, जहां तक शिक्षा व्यवस्था का ताल्लुक है, यह कहा जा सकता है कि सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही की व्यवस्थाएं नाकामयाब रही हैं। दोनों व्यवस्थाओं ने शिक्षक को तोड़ा है और शिक्षार्थी को यह तो अभिजात्य गिरोह में फेंका है अथवा सड़क छाप की बिरादरी में ला खड़ा किया है। इनमें वे विद्यार्थी सम्मिलित नहीं किए हैं जो 'यह सर' की नपुंसक बिरादरी में मिल गए हैं। खुलासा किस्सा यह है कि शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही राह भटके इंसान हैं।

आजादी के बाद से सोच दिल्ली के विस्तार का रहा, सेवाग्राम को अपनाने का नहीं परिणामतः दरियां बढ़ती चली गईं और साज समानांतरवाद सामने आ खड़ा हुआ। यकीनन यही हमारी शिक्षा का संकट है शिक्षा जिंदगी और समाज से जुदा चीज नहीं है। आजाद मुल्क की आबोहवा में इस गलतफहमी का कोई अर्थ नहीं है कि फिर से चंद लोगों की मुट्ठी में ताकत कैद हो जाए। निरंतर यह प्रवृत्ति बढ़ी-चाहे राजनीतिक दल हो, या बुद्धिजीवियों की जमात-एक व्यक्ति यदि उसका अगुवा बन गया तो वह बना रहे और हो सके तो वह उसे पुश्तैनी रंग दे डाले। यह लोकतंत्र की नहीं, एकतंत्र की तानाशाही प्रवृत्ति है। जब-जब तानाशाही प्रवृत्ति बढ़ी तब-तब मानवता पर संकट आया। तानाशाही मिजाज सबसे पहले दूसरों की आजादी को छीनता है और सिर उठाने वालों का सिर कलम करवा डालता है। निस्संदेह इससे खौफ बढ़ता है और स्वतंत्र चिंतन पर प्रहार होता है। चेतना कुंठित होती है। आम आदमी का जीना मुश्किल हो जाता है। यही वह जहर है जो ईसा-सुकरात के पैदा होने की संभावना मात्र से उन्हें मार डालता है।

तारीख के खुले सफ इस बात के गवाह हैं कि संकट मंडराने का कारण हमेशा तानाशाही प्रवृत्ति रही है। शिक्षा का संकट इसी जहरीली हवा के कारण है। सारे माहौल में जहर फैल रहा है, फिर शिखा

क्या करे और कैसे वह शंभु होकर उसे पी जाए। दरअसल यह नामुमकिन है कि इलाज करने वालों को जंजीरों में जगड़ दो और फिर उससे आशा करो कि वह बीमारों की दवा करे उन बीमारों की जो ताजी हवा, खले आसमान ममतामयी धरती ओर तेजोमयी प्रकाश-गंध के सुकून से महरूम कर दिए गए हैं।

विद्यालय समाज की प्रयोगशालाएं हैं। समाज क्या करना चाहता है और कैसे करना चाहता है, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वह अपने इरादे प्रकट करे। यदि वह प्रयोगशाला से उनकी आजादी छीन लेता है और उसे अपना एक महकमा बना डालता है तो वहां तालीम नहीं पनप सकती। यही कारण है कि महाविद्यालय लगातार शोधरत रहने के बाद भी हरबर्ट स्पेंसर की पंच सोपानीय पद्धति से आगे नहीं बढ़ सके और बदलते हालात को ध्यान रखते हुए कोई प्रयोग नहीं कर सके। यदि इक्का-दुक्का कोई प्रयोग शुरू भी किया गया तो वह मात्र किसी आला अफसर के कारण, जिसके जेहन में गर्दिश से गुजरते समाज का दर्दन नहीं, बल्कि अपने को मसी हाई बिरादरी में दाखिल कराने की जबर्दस्त ख्वाहिश थी। यह भी हो सकता है कि यूनीसेफ का पैसा उनमें तीसरी दृष्टि खोल रहा हो। दरअसल अभी तक हम अधिकचचे प्रयोग या आधार लिए भं्रात और दुर्भाज्यपूर्ण दर्शन के चक्कर में अपनी रही-सही पहचान खोते रहे हैं। गहरे दर्द के बिना दृष्टि नहीं। दर्द है किसे? कौन है जो दवा बनने के लिए खुद होम करने को तैयार है?

नहीं लगता कि यह गांधी का देश है नहीं लगता कि कुर्बानी का देश है। यदि यह देश है तो इसलिए कि इसकी जमीन की सीमाएं हैं। इसका अपना संविधान और इसके शासक इसे देश मानते हैं। वह संविधान जिस के मुख्य निर्माता ने कहा था 'यह काम चलाऊ संविधान है उस समय में किराए का टटू था जब मुझसे संविधान बनाने के लिए कहा गया था। मैंने बहुत कुछ अपनी इच्छा के विरुद्ध किया।' डॉ. काटजू के एक प्रश्न के जवाब में उन्होंने कहा था 'श्रीमान जी, मैं यह बता देना चाहता हूं कि मैं पहला व्यक्ति हूं जो इसे जला देगा।' ऐसे अनेकानेक प्रश्न हैं, जो आज तक अधूरे पड़े सुबक रहे हैं। यह काम शिक्षा का था, शोध का था कि वह अपने समय के प्रण को पहचानने के लिए उस सच्चाई के विद्रोह की तर्हों में तब तक उतर जाता जब तक उसके हाथ वह सूत्र नहीं लग जाता जिसका दर्द लेकन उसके निर्माता चले गए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। गांधी जी की फितरत में लगातार प्रयोग करने की बलवती इच्छा थी। वे सदा 'स्कॉलट' बने रहना चाहते थे। आज वह धरा कहां है? कहां है वह सरस्वती?

गांव में शिक्षक बना रहे, इसके लिए प्रयास बराबर जारी है। आदेश निकलते रहे हैं और उनकी अनुपालना के लिए वार्ड पंच को मुर्कर किया है। पंचायत की निगरानी में उसे रखा गया है। आम आदमी के बीच यह अफवाह जोर पकड़ती जा रही है कि गांव में अध्यापक रुकता नहीं है। गांव में डॉक्टर वैद्य आदि कोई नहीं रुकता है। नौकरी उनकी मजबूरी है। मजबूरी जब उनके खुशनुमा ख्वाबों का गला घोटने लगती है तब वे गांव से भाग खड़े होते हैं। भागते ही जाते हैं, पलटकर गांव की ओर नहीं देखते, कदाचित्त चुनाव जीतने के बाद सरपंच से लेकर विधायक, सांसद, मंत्री आदि तब तक गांव की ओर भूलकर नहीं देखते जब तक चुनाव की सरगर्मियां पुनः शुरू नहीं हो जाती है पर क्यों? क्यों गांव के मुखिया-सुखिया या सूदखोर, शाहजी आदि शहर में हवेली बनाते हैं और गांव का अपना कार्यक्षेत्र बनाए रखते हैं?